निवेदन

—:*:—

विदेशों में श्रीयुत जेम्स एलन की पुस्तकों का कितना आदर है, इस का अनुमान इस से किया जा सकता है कि वहां उन की प्रत्येक पुस्तक की कई हजार प्रतियां बिक चुकी हैं। सौभाग्य से अंग्रेज़ीदां भारतवासी भी उन के ग्रन्थों से अब लाभ उठाने लगे हैं, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि हिन्दी में उन की पुस्तकों का अभी तक अनुवाद बहुत कम हुआ है; जिस से हिन्दी जाननेवाले उन की शिक्षाओं से वंचित रहते हैं। इसी कमी को दूर करने के लिए हमने उन की पुस्तकों को प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। यह दूसरी पुस्तक है। यदि हिन्दी-भाषा-भाषियों को इसे कुछ भी लाभ हुआ तो हम शीघ्र अन्य पुस्तकें पाठकों की भेंट करेंगे। थियोसोफी मत के अनुयायी जेम्स एलन की पुस्तकों को बड़ी रुचि और भक्ति से पढ़ते हैं। आशा है कि हिन्दी जाननेवाले थियोसोफ़िस्टस् भी अब उन की नैतिक शिक्षाओं से यथेष्ट लाभ उठाएंगे।

प्रथमावृत्ति १५–१२–१६
द्वितीयावृत्ति २०–३–१८
तृतीयावृत्ति २८–२–२०

दयाचन्द्र गोयलीय
लखनऊ

मूलग्रंथकर्त्ता के विचार।

—:o:—
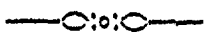
अपने हृदय को पवित्र करो, इसी से तुम्हारा जीवन उदार, सुन्दर, सुखी और शांत बनेगा। अपने मन को पूर्णरूप से अपने वश में रक्खो इस से तुम सभ्यता, स्वतंत्रता, शक्ति और विजय प्राप्त करोगे और कोई भी तुम्हें कष्ट या दुःख न पहुंचा सकेगा, कारण कि तुम्हारे सारे शत्रु तुम्हारे मन और हृदय में विद्यमान हैं। यदि तुम्हारा हृदय शुद्ध है तो तुम्हें मुक्ति भी वहीं (हृदय में) प्राप्त होगी।

कानफ्यूसियस (Confucius.) का कथन है कि सम्पूर्ण उन्नति और नैतिक वृद्धि का मूल आत्मोन्नति है। वास्तव में यह कथन जितना सीधा सादा और अमल करने योग्य है उतना ही गूढ़ और विचारणीय है, कारण कि ज्ञान प्राप्ति के लिए अथवा संसार का कुछ भला करने के लिए आत्मोन्नति से बढ़कर और कोई निश्चित मार्ग नहीं है। आत्मोन्नति से बढ़कर कोई दूसरा उच्च या उत्तम कार्य भी नहीं है। जो मनुष्य इस बात को सोचने का उद्योग करता है कि किस तरह मैं निर्दोष हो जाऊं, मेरा हृदय शुद्ध और पवित्र हो जाए, मेरा मन शांत, गम्भीर और विचारशील हो जाए, वह सर्वोत्तम कार्य्य कर रहा है और उस के परिणाम सुखी, सुन्दर और नियमबद्ध जीवन में प्रत्यक्ष में दिखलाई दे रहे हैं।

—:o:*:o:—

विषय-सूची ।

१. हृदय और जीवन .... पृष्ठ १—२
२. मन का स्वभाव और उस की शक्ति ,, ३—५
३. आदत का बनाना .... ,, ६—९
४. कार्य्य और च[illegible] .... ,, १०—१३
५. उत्तम जीव[illegible] के उपाय .... ,, १४—२९
६. मानसिक दशाएं और उनके परिणाम ,, ३०—३४
७. उपदेश .... ,, ३५—३६

—:○:०:○:—

आत्म-रहस्य

१—हृदय और जीवन।

जैसा मनुष्य का हृदय होगा, वैसा ही उस का जीवन होगा। जो हृदय में होता है, वही क्रमशः बाहर आता रहता है। हृदय की कोई भी बात प्रगट हुए बिना नहीं रहती। जो बात हृदय में छिपी हुई रहती है, वह थोड़े समय के लिए ही रहती है। अंत में एक न एक दिन प्रगट हो जाती है। केवल परिपक्व होने में देर लगती है। संसार में प्रत्येक वस्तु की चार अवस्थायें होती हैं—बीज, वृक्ष, फूल और फल। यही संसार का नियम है। मनुष्य के हृदय के अनुसार ही उस के जीवन की अवस्थायें होती हैं। उसके विचारों से कार्य रूपी फूल निकलते हैं और कार्यों में चरित्र और भाग्य के फल लगते हैं।

मनुष्य का जीवन सदा अंदर से बाहर प्रगट होता रहता है। जो विचार हृदय में उत्पन्न होते हैं, वे समय पाकर शब्दों में प्रगट होते हैं और अन्त में उन्हीं के अनुसार कार्य्य होते हैं। जिस प्रकार गुप्त सोते में से जल का फव्वारा निकलता है, उसी प्रकार जीवन भी मनुष्य के हृदय की गुप्त खोह में से निकलता है। जो कुछ मनुष्य है और जो कुछ वह करता है वह सब हृदय से उत्पन्न होता है और जो कुछ वह भविष्य में होगा और करेगा वह भी हृदय से ही उत्पन्न होगा।

शोक और हर्ष, दुःख और सुख, आशा और भय, राग और द्वेष, ज्ञान और अज्ञान सब हृदय के भीतर ही हैं, और कहीं नहीं हैं। ये केवल मन की अवस्थायें हैं।

मनुष्य स्वयं अपने हृदय का रक्षक, अपने मन का निरीक्षक और अपने गढ़ रूपी जीवन का द्वारपाल है। इस दशा में चाहे वह सावधानी से श्रम करे चाहे असावधानी से आलसी बना रहे, यह सर्वथा उस के हाथ में है।

दोनों मार्ग उस के वास्ते खुले हैं। ज्ञान और आनंद के मार्ग को जाना चाहे तो अपने हृदय को भली भांति सँभाल कर रक्खे, अपने मन को स्वच्छ और पवित्र बनाए, नीच और गंदे विचारों को अपने पास न आने दे। यदि अज्ञान और दुःख के मार्ग पर जाना है तो भले ही असावधानी से रहे और बिना किसी नियम के जीवन व्यतीत करे। दोनों बातें मनुष्य कर सकता है। उस के जीवन का अच्छा बुरा होना केवल उसी पर निर्भर है। इस कारण मनुष्य को उचित है कि भली भांति जान ले कि जीवन का उस के मन से विकास होता है। इस बात को जान लेने से परमानंद का मार्ग उस के लिए खुल जावेगा, कारण कि उस को फिर यह ज्ञान हो जावेगा कि मुझ में अपने मन को वश में रखने की शक्ति है और मैं मन को अपने आदर्श के अनुसार बना सकता हूं। ऐसा जान कर वह विचार और कर्म के उन्हीं मार्गों पर दृढ़ता के साथ चलेगा जो सर्वथा श्रेष्ठ हैं। उस के लिए जीवन एक सुन्दर और पवित्र वस्तु बन जाएगी और धीरे धीरे वह अपनी सारी व्यथा और चिंता को अपने हृदय से निकाल बाहर करेगा। उसका सारा दुःख और अज्ञान दूर हो जावेगा, [illegible] कि जो मनुष्य अपने हृदय के कपाटों की पूर्ण रूप से रक्षा [illegible] उसको अवश्य स्वाधीनता, ज्ञान और कीर्ति प्राप्त हो[illegible]

२—मन का स्वभाव और उस की शक्ति।

मन मनुष्य के जीवन का आधार है। मन से ही भिन्न भिन्न दशायें उत्पन्न होती और बनती हैं और उन सब का फल भी मन ही भोगता है। मोह और अज्ञान के उत्पन्न करने तथा सत्यता और वास्तविकता के पहिचानने की शक्तियां भी मन के भीतर ही हैं। हमारा जीवन एक करघा है। उस पर मन रूपी जुलाहा विचार रूपी सूत से भले बुरे कामों के ताने वाने कर के चरित्र रूपी वस्त्र को बनाता है और उस वस्त्र में अपने को उसी प्रकार लपेट लेता है जिस प्रकार रेशम का कीड़ा।

मनुष्य एक ऐसा जीवधारी है कि उस में मन की समस्त शक्तियां विद्यमान हैं और उन पर उस का पूर्ण अधिकार है, चाहे जिस को काम में लावे। जो कुछ ज्ञान मनुष्य को होता है वह सब अनुभव से होता है और अनुभव को घटाना बाढ़ना मनुष्य के हाथ में है। किसी स्थान पर भी मनुष्य बंधन में नहीं डाला गया, हां यह अवश्य है कि वह स्वयं अनेक स्थानों पर अपने को बंधनों में डाल लेता है तथापि वह चाहे तो बंधनों से अपने को हर समय छुड़ा सकता है। वह अपने को पशु समान भी बना सकता है और देवता समान भी, दुर्जन भी और सज्जन भी, अज्ञानी भी, बुद्धिमान भी, जैसा चाहे वैसा अपने को बना सकता है। लगातार किसी कार्य को करने से मनुष्य एक प्रकार की आदत बना सकता है और फिर उद्योग कर के उस आदत को तोड़ भी सकता है। वह अपने को यहां तक भ्रमों में डाल सकता है कि सत्य को बिलकुल भूल जाए, परन्तु उस में यह शक्ति भी है कि भ्रम को एक एक करके दूर कर दे और फिर सत्य प्राप्त करं

ले । मनुष्य की संभावनाओं की कोई सीमा नहीं हैं। वे अनंत हैं और उस की स्वतंत्रता पूर्ण है ।

मन का यह स्वभाव है कि उस में अनेक अवस्थायें उत्पन्न होती रहती हैं और उन में से चाहे जिस को वह अपने लिए पसंद कर सकता है। मन में यह शक्ति भी है कि वह चाहे किसी अवस्था को बदल दे अथवा उस को बिलकुल त्याग दे । वह सदैव यह करता रहता है कारण कि निरन्तर के अभ्यास से उसे अवस्थाओं का ज्ञान होता जाता है ।

विचारों की आन्तरिक क्रियाओं से मनुष्य का चरित्र और जीवन बनता है, पर मनुष्य में यह शक्ति है कि वह अपने मनोबल और उद्योग से उन प्रक्रियाओं को बदल सकता है। आदतों, कमजोरियों और पापों के बंधन स्वयं मनुष्य के बांधे हुए होते हैं और केवल वह ही उन को तोड़ सकता है। वे सिवाए मन के और कहीं नहीं होते। यद्यपि उन का सम्बन्ध बाहरी वस्तुओं से दीख पड़ता है; परन्तु वास्तव में उन की स्थिति बाहरी पदार्थों में नहीं होती। बाह्य अवस्था अन्तरंग अवस्था के अनुकूल बनती और प्रगट होती है न कि अन्तरंग अवस्था बाह्य अवस्था के अनुकूल। बाह्य पदार्थों में लोभ उत्पन्न नहीं होता, किन्तु उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए मन की कुवासना और कुइच्छा में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार दुःख और शोक भी बाह्य पदार्थों और जी उन की घटनाओं में उत्पन्न नहीं होते। उन की जड़ भी उन पदार्थों और घटनाओं की ओर मन की अशिक्षित प्रवृत्ति में होती है। मन स्वच्छता से शिक्षित और ज्ञान से रक्षित होता है वह उन कुइच्छाओं और कुवासनाओं को त्याग देता है जिन का दुःख से घनिष्ट सम्बध होता है। ऐसा करने से उसे ज्ञान और शांति प्राप्त हो जाती है।

दूसरों को बुरा कहने से और बाह्य अवस्थाओं को बुराई की जड़ समझने से दुनिया का दुःख और शोक घटता नहीं है, किन्तु बढ़ता है। बाह्य अवस्था आंतरिक दशा की केवल छाया और परिणाम होती है। जब हृदय शुद्ध और पवित्र होता है तो समस्त बाह्य वस्तुएं शुद्ध और पवित्र होंगी।

यह संसार का एक अटल नियम है कि वृद्धि और जीवन अन्दर से बाहर की ओर होता है और ह्रास और मृत्यु बाहर से अन्दर की ओर। तात्पर्य यह है कि मन की प्रवृत्ति के अनुसार ही मनुष्य का जीवन बनता जाता है। सम्पूर्ण विकास अन्तःकरण से होता है। अतएव अन्तःकरण में ही प्रत्येक बात का निर्णय होना उचित है। जो मनुष्य दूसरों के विरुद्ध उद्योग करना छोड़ कर अपनी शक्तियों को अपने मन के बनाने, सुधारने और बढ़ाने में लगाता है वह अपनी शक्ति को भी बनाए रखता है और अपना रक्षक भी आप हो जाता है। जब उसे अपने चित्त के शान्त करने में सफलता हो जाती है, तब वह दूसरों को भी अपनी उदारता और सभ्यता से अपनी जैसी शुभ दशा में ले जाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि वास्तविक ज्ञान और शांति का मार्ग दूसरों के चित्त पर अधिकार जमाने में नहीं है, किन्तु यह मार्ग उसी समय मिलता है जब मनुष्य स्वयं अपने चित्त पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, अपनी आत्मा को दृढ़ और उच्च गुणों की ओर ले जाता है।

मनुष्य का जीवन उस के हृदय से बनता है। जैसे विचार उठते हैं और जो कार्य होते हैं उन के अनुसार ही चित्त बन जाता है। मनुष्य चाहे तो नवीन विचारों से चित्त को नए ढंग का बना सकता है और जीवन को परिवर्तन कर सकता है, अतएव अब इसी पर हम को विचार करना चाहिए।

३—आदत का बनाना।

मन की प्रत्येक दृढ़ वृत्ति का नाम स्वभाव वा आदत है जो किसी बिचार के निरंतर मन में आने से बन जाती है। निराशा और प्रसन्नता, क्रोध और शांति. लोभ और उदारता ये सब वास्तव में मन की अवस्थायें हैं। जब मनुष्य बार बार अपने मन को इन की ओर ले जाता है तो ये ही आदतों का रूप धारण कर लेती हैं, यहां तक कि फिर अपने आप होने लगती हैं। यदि कोई विचार निरंतर मन में आवे तो एक दिन वह मन का दृढ़ स्वभाव हो जाता है और ऐसे स्वभावों से ही मनुष्य का जीवन बनता है।

यह मन का स्वभाव है कि वह अपने अनुभवों की पुनरावृत्ति से ज्ञान प्राप्त करता है। जिन विचारों को चित्त में रखना भी कठिन जान पड़ता है वे ही विचार एक दिन पुनः पुनः मन में आने से मन की स्वाभाविक अवस्थाओं का रूप धारण कर लेते हैं। जब कोई बालक किसी काम को सीखना प्रारम्भ करता है तो पहिले उस से ठीक ठीक औज़ार भी हाथ में नहीं लिया जाता। उन का ठीक ठीक काम में लाना तो अलग रहा; परन्तु लगातार कुछ समय तक उद्योग करते रहने से वही बालक उन्हीं औज़ारों को बड़ी चतुराई से चलाने लगता है। ठीक यही दशा चित्त की है। जो विचार पहिले असंभव जान पड़ते हैं वे ही बिचार बराबर चित्त में आते रहने से अन्त में मनुष्य के चरित्र का भाग बन जाते हैं और उस की प्रकृति में शामिल हो जाते हैं।

मन की इन आदतों के बनाने और सुधारने की शक्ति में ही मनुष्य की मुक्ति का आधार है और यही द्वार पूर्ण स्वाधीनता का है, कारण कि जिस प्रकार मनुष्य में बुरी आदतों के बनाने की शक्ति है, उसी प्रकार अच्छी आदतों के बनाने की शक्ति भी है। इस विषय पर तनिक अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है और पाठकों को भी तनिक दृढ़ विचार-शक्ति से काम लेना उचित है। जन साधारण का विश्वास है कि भला करने से बुरा करना सहल है, पवित्र रहने से पापी रहना आसान है। सारे संसार के आदमी इस बात को सच मानते हैं। यहां तक कि बुद्ध देव जैसे ज्ञानी ने एक स्थान पर कहा है कि "बुरे और हानिकर कामों को करना आसान है, किंतु अच्छे और लाभदायक कामों का करना कठिन है।" किसी कवि ने भी कहा है "भली करत लागे विलंब बुरी विलम्बन नाय। भवन बनावत दिन लगें, ढाहत बिलँव न लाय।" लोगों को देखते हुए यह कहना ठीक भी है; परन्तु सर्वथा सत्य नहीं है, हां कुछ अंश तक अवश्य सत्य है। यह कोई अटल या विश्वव्यापी नियम नहीं है। मनुष्य को भला करने से बुरा करना क्यों आसान है? कारण यही है कि संसार में अविद्यांधकार फैला हुआ है। पदार्थों की वास्तविक दशा का ज्ञान नहीं है तथा जीवन के महत्व को लोग समझते नहीं हैं। निस्सन्देह जब बालक लिखना सीखता है तो उसके लिए लेखनी का ग़लत पकड़ना और अक्षर ग़लत बनाना बहुत आसान है और लेखनी का ठीक ठीक पकड़ना और अक्षरों की सूरत का ठीक ठीक बनाना कठिन और कष्टदाई है; परंतु इसका कारण क्या है? यह कि बालक को ठीक ठीक लेखनी पकड़ने और ठीक ठीक अक्षर बनाने का ज्ञान नहीं है। लगातार उद्योग करते रहने से उसको इन बातों

का ज्ञान हो जावेगा। फिर उस के लिए ठीक २ लिखना ऐसा ही आसान हो जावेगा जैसा कि पहिले कठिन था। इतना ही नहीं किंतु गलत लिखना कठिन और अनावश्यक भी हो जावेगा। ठीक यही दशा मन और जीवन की है। प्रारम्भ में सही २ विचार करने और ठीक ठीक काम करने के लिए निरंतर उद्योग और श्रम की आवश्यकता है; परंतु अंत में ऐसा समय आ जाता है जब कि सही २ विचार करना और ठीक २ काम करना मनुष्य के लिए सरल और स्वभाविक हो जाता है और गलत करना कठिन और अनावश्यक मालूम होने लगता है। जिस प्रकार कोई कारीगर काम करते २ अपने काम में निपुण हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य निरंतर अभ्यास करते २ भलाई में निपुण हो जाता है। विचारों के पुनः पुनः मन में आने की आवश्यकता है। जिस मनुष्य के लिए ठीक ठीक विचार करना सरल और स्वाभाविक हो जाता है और बुरे विचार और कार्य करना कठिन मालूम होने लगता है, वह उत्तम सत्य के मार्ग पर पहुंच गया है, और उसने विशुद्ध और आत्मिक ज्ञान को प्राप्त कर लिया है।

मनुष्य के लिए पाप करना इतना सरल और स्वाभाविक क्यों हो जाता है? इस कारण से कि निरंतर करते २ हानिकर और पापमय विचारों की आदत पड़ जाती है। चोर को अवसर मिलने पर चोरी से हट जाना बहुत कठिन है कारण कि बहुत समय से वह लोभ और लालच के विचारों में ही बह रहा है। परंतु उस सच्चे महात्मा पुरुष के लिए जो सदा सद्विचारों में रहा है और जिसको इतनी बुद्धि प्राप्त हो गई है कि सत्य और असत्य को पहिचान सके और जिसके चित्त में चोरी इत्यादि का भूल कर भी

ख्याल नहीं आता उसके लिए चोरी करना बड़ा कठिन है। तात्पर्य यह है कि चाहे सद्गुण हों चाहे अवगुण सब अभ्यास से पड़ जाते हैं और अभ्यास का नाम ही आदत है॥ हजारों मनुष्यों में क्रोध और असंतोष स्वाभाविक हो जाता है, कारण कि वे सदा क्रोध और असंतोष के विचारों को ध्यान में रखते हैं और वैसे ही काम करते हैं। पुनः पुनः ऐसा करते रहने से क्रोध और असंतोष की उनमें आदत पड़ जाती है जो नित्यशः बढ़ती जाती है। इसी तरह शांति और संतोष भी मनुष्य के स्वभाव बन सकते हैं। सब से पहिले मनुष्य को उचित है कि ऐसे विचारों को अपने मन में स्थान दे। पश्चात् उन्हीं विचारों को चित्त में रख कर उनके अनुसार काम किए जावें। करते २ स्वभाव भी वैसा ही पड़ जावेगा और क्रोध और असंतोष बिल्कुल जाते रहेंगे। इस रीति से प्रत्येक बुरा विचार चित्त से दूर हो सकता है। इसी तरह प्रत्येक असत्कार्य का नाश हो सकता है और इसी तरह प्रत्येक पाप पर मनुष्य विजय प्राप्त कर सकता है।

——०——

४—कार्य और ज्ञान ।

दि मनुष्य भली भांति इस बात का अनुभव कर ले कि उसके सम्पूर्ण जीवन का प्रादुर्भाव उस के मन से होता है और मन आदतों का समूह है और आदतें उद्योग से परिवर्तित हो सकती हैं और उन पर उसका पूरा २ अधिकार हो सकता है, तो उस को अवश्य वह कुंजी मिल जाएगी जिस से उसकी पूर्ण स्वाधीनता का द्वार खुल जाएगा। जीवन की बुराइयां वास्तव में मन की बुराइयां हैं। उन से छुटकारा धीरे २ होता है। ज्यों २ हृदय शुद्ध होता जाता है त्यों २ स्वतंत्रता मिलती जाती है। एक दम से कोई बाह्य वस्तु आकर इस स्वतंत्रता को नहीं दे सकती। प्रति दिन और प्रति समय चित्त को इस तरह सधाना चाहिए कि जिस दशा में उसे प्राय: गलती में पड़ जाने की सम्भावना है उस दशा में भी सद्विचारों को अपने मन में स्थान दें और अपनी वृत्तियों को ठीक और निर्लेप रक्खे। जिस प्रकार एक मूर्ति बनानेवाला शिल्पकार अनघड़ पत्थर में से धीरे २ अपनी इच्छानुसार मूर्ति बना लेता है उसी प्रकार उत्तम जीवन के अभिलाषी मनुष्य को भी अपने अनघड़ चित्त पर काम करना चाहिए, यहां तक कि वह उसको अपने आदर्श के अनुसार बना ले।

इस उत्तम पद को प्राप्त करने के वास्ते इस बात की आवश्यकता है कि सब से नीची और सब से आसान सीढ़ी से आरम्भ किया जाए और ऊंचे २ चढ़ते हुए सब से ऊंची सीढ़ी पर

पहुंच जाना चाहिये । जीवन के प्रत्येक विभाग में और मनुष्य के प्रत्येक कार्य में इस अटल नियम की आवश्यकता है कि उन्नति और विकाश क्रमश: दरजे बदरजे चढ़ते हुए होना चाहिये । जहां इस नियम का उल्लंघन किया जाता है वहां सफलता का अभाव रहता है ।

विद्या प्राप्त करने, कला कौशल सीखने और व्यापार में सब कोई इस नियम का पूर्णतया पालन करते हैं; परन्तु धर्म और सत्य के जानने में और जीवन का ज्ञान और व्यवहार सीखने में प्राय: सब के सब इस नियम का उल्लंघन करते हैं । यही कारण है कि सत्य, धर्म और उत्तम जीवन बहुत कम काम में लाये जाते हैं और लोगों को उन का ज्ञान तक नहीं होता ।

यह कल्पना कर लेना कि केवल पुस्तकों के पढ़ने और धार्मिक या तात्विक बातों के मानने से ही उत्तम जीवन प्राप्त हो जाता है और आत्मिक उन्नति के सिद्धान्त समझ में आ जाते हैं, एक साधारण भूल है । कदापि ऐसा नहीं होता । उत्तम जीवन मन, वचन काय के शुभ योग से प्राप्त होता है । विश्व का आत्मिक ज्ञान केवल जब ही हो सकता है जब उस की खोज की जाए और व्यवहार उसी समय प्राप्त हो सकता है जब उस को काम में लाने की धुन में बहुत समय तक उद्योग किया जाए ।

बड़ी और ऊँची बातों के जानने से पहले छोटी और नीची बातों को भली भांति जान लेना चाहिये । यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो ऊँची बातें कदापि समझ में नहीं आवेंगी । किसी सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के वास्ते पहले उस को काम में लाना चाहिये । अध्यापक प्रारंभ में कदापि गणित के गूढ़ सिद्धांतों

को नहीं बतलावेगा। वह जानता है कि ऐसा करने से परिश्रम व्यर्थ जाएगा और विद्यार्थी कुछ नहीं सीख सकेंगे। तो फिर करता क्या है ? पहले वह एक साधारण सवाल विद्यार्थियों को देता है और उस को विद्यार्थियों से करने के लिए कहता है। जब कई बार की नाकामयाबी और बार बार के नये उद्योग से उस सवाल को कर लेते हैं तो फिर कुछ कठिन सवाल को देता है। इसी तरह उत्तरोत्तर कठिन सवाल दिये जाते हैं और जब तक विद्यार्थियें को वर्षों श्रम करने पर गणित के सारे नियम ठीक २ नहीं आ जाते तब तक वह कदापि गणित के गूढ़ सिद्धान्तों को उन के समीप उपस्थित नहीं करता। यदि किसी बालक को मशीन का काम सिखलाना है तो आरम्भ में उस को यंत्र-विज्ञान के सिद्धांतों को कदापि नहीं बतलाया जाएगा; किंतु एक साधारण औज़ार उस के हाथ में दे दिया जाएगा और उस का ठीक तरह से पकड़ना उस को बतलाया जाएगा और फिर उस को चलाने के लिये कहा जाएगा जब औज़ार का चलाना उस को आ जावेगा तो फिर उस को कोई दूसरा कठिन काम दिया जाएगा। भावार्थ जब वर्षों इस तरह काम कर लेगा तब कहीं जाकर उस को यंत्र-विज्ञान के सिद्धांन्त समझाए जाएँगे।

अच्छे घरों में पहले बालक को यह सिखलाया जाता है कि आज्ञा पालन करे और प्रत्येक दशा में अच्छा व्यवहार करे। बालक को यह नहीं बतलाया जाता कि उस से ऐसा क्यों कराया जाता है। उस से केवल यही कहा जाता है कि ऐसा करो। जब उस को योग्य और उचित कार्यों के करने का अभ्यास हो जाता है तब उसे बतलाया जाता है कि ऐसा क्यों करना चाहिये। कोई

पिता अपने पुत्र को सदाचार के सिद्धांत नहीं सिखलाएगा जब तक कि वह उसे पुत्र के धर्म और सामाजिक कर्तव्यों का पालन करते हुए न देख लेगा। साधारण कार्यों में भी पहले क्रिया होती है और फिर उस का ज्ञान। आत्मिक सिद्धांतों और उत्तम जीवन के लिए तो यह नियम और भी दृढ़ है। धर्म का वास्तविक ज्ञान केवल सद्गुणों के अभ्यास से होता है और सत्य का ज्ञान केवल तभी प्राप्त होता है जब धर्माचरण में मनुष्य निपुण हो जाता है। सद्गुणों के अभ्यास और प्राप्ति में निपुण होना ही सत्य के ज्ञान में निपुण होना है। सत्य की प्राप्ति केवल तभी होती है जब रात दिन उस का ध्यान रक्खा जाए। साधारण बातों में भी सत्य को काम में लाता हुआ कठिन बातों तक पहुंच जाए। जिस प्रकार बालक पाठशाला में शांति से आज्ञा पालन करता हुआ अपने पाठ को याद करता है और सदा अभ्यास और उद्योग करता हुआ अंत में समस्त असफलताओं और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार सत्य सीखनेवाला बालक अपने विचारों और कार्यों में सत्य का अभ्यास करता है, असफलता से निराश और भयभीत नहीं होता, बल्कि कठिनाइयों से और दृढ़ हो जाता है और ज्यों ज्यों भलाई प्राप्त करने में उसे सफलता होती जाती है त्यों त्यों उस का हृदय सत्य के ज्ञान के लिये खुलता जाता है। यही वह ज्ञान है जिस में वह शांति से निर्भय रह सकता है।

——:*:—:*:——

५—उत्तम जीवन के उपाय।

इस बात को देखते हुए कि धर्म और ज्ञान का मार्ग एक है, बिना ज्ञान के कोई मनुष्य धर्मात्मा नहीं बन सकता और यह भी देखते हुए कि सत्य के सर्वव्यापी सिद्धांत उस समय तक समझ में नहीं आ सकते जब तक कि नीचे की अवस्थाएँ तै न कर ली जावें, यह प्रश्न उठता है कि सत्याभिलाषी को किस ढंग से आरम्भ करना चाहिये, किस तरह वह मनुष्य जो अपने मन को सुधारने की इच्छा रखता है और अपने हृदय को जो जीवन के समस्त तत्वों का स्रोत है, पवित्र करना चाहता है—सत्य और धर्म के पाठों को सीखेगा और उन को सीख कर ज्ञान बल से अपने को बढ़ाएगा और अज्ञान का नाश करेगा। आरम्भ की सीढ़ियां कौन सी हैं, प्रारम्भिक पाठ कौन से हैं, किस तरह वे सीखे जा सकते हैं, किस तरह उन को व्यवहार में लाया जा सकता है और किस प्रकार वे समझे जा सकते हैं, इन्हीं प्रश्नों का उत्तर इस अध्याय में दिया जाएगा।

पहला पाठ यह है कि चित्त की उन वृत्तियों को जो आसानी से दूर हो सकती हैं, परन्तु जो आत्मिक, सामाजिक तथा गृहस्थ की साधारण बातों में विघ्न डालती हैं, दूर किया जाए। पाठकों के सुभीते के लिये पहिली दस बातों को तीन पाठों में विभक्त करके नीचे लिखा जाता है।

वे दुर्गुण जिन्हें दूर करना चाहिये।

शरीर के दुर्गुण।

१. आलस २. स्वार्थपरता	पहला पाठ काय को वश में रखना—

जिह्वा के दुर्गुण।

१. दूसरों पर झूठा कलंक लगाना २. गपशप और व्यर्थ की बातें करना ३. गाली गलोज और कठोर वचन बोलना ४. असभ्य भाषण करना ५. दूसरों के दोष ढूँढना	दूसरा पाठ— जिह्वा को वश में रखना

वे सद्गुण जिन्हें ग्रहण करना चाहिये:—

१. कर्त्तव्य का निःस्वार्थ पालन करना २. सत्य पर अटल जमे रहना ३. अनंत क्षमा	तीसरा पाठ— मन को वश में रखना।

पहले दो अवगुणों को शारीरिक और दूसरे पांच अवगुणों को जिह्वा के इस लिये कहा जाता है कि वे शरीर से और जिह्वा से प्रगट होते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि उन को इस प्रकार विभक्त करने से पाठकों के मन पर अधिक प्रभाव पड़ेगा; परंतु यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिये कि आरम्भ में ये दुर्गुण मन में ही उत्पन्न होते हैं और हृदय की वे बुरी वासनाएँ हैं जो शरीर और जिह्वा द्वारा कार्य्य रूप में परिणित होती हैं।

यह दशा इस बात को सूचित करती है कि मन को अभी जीवन के वास्तविक उद्देश्य और अर्थ का कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ है। ऐसी दशाओं का जड़ से उखाड़ डालना उत्तम, दृढ़ और प्रकाशमय जीवन का प्रारम्भ है; परंतु प्रश्न यह है कि किस प्रकार यह अवगुण दूर हो सकते हैं। यह एक बड़े महत्व का प्रश्न है। इस का उत्तर यही हो सकता है कि पहले उनके प्रगट होने को ही रोक दिया जाए। अर्थात् उनको कार्य्य रूप में प्रगट ही न होने देना चाहिये। ऐसा करने से चित्त सावधान हो जाएगा और विचार करने लगे गा, यहां तक कि अभ्यास करते करते अन्त में चित्त को उन बुरी वासनाओं का, जिन से ऐसे बुरे कर्मों की उत्पत्ति हुई है, ज्ञान हो जाएगा और वह उन्हें सर्वथा त्याग देगा।

मन को सधाने और शिक्षित करने के लिये सब से पहली सीढ़ी आलस को दूर करना है। यह सब से आसान सीढ़ी है और जब तक मनुष्य पूर्ण रीति से इस सीढ़ी पर पहुंच नहीं जाता तब तक दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना भी असंभव है। सत्य मार्ग की प्राप्ति के लिये आलस बड़ा बाधक है। आवश्यकता से अधिक सोना अथवा शरीर को आराम देना और आवश्यक कार्यों को न करके व्यर्थ समय को खो देना इसका नाम आलस है। इस को दूर करने के लिये प्रातः काल उठने की आदत डालनी चाहिये। स्वास्थ्य बनाए रखने के लिये जितनी देर तक सोने की आवश्यकता हो, उतनी ही देर शयन करना चाहिये और जो कार्य सामने आवे चाहे वह कितना ही छोटा हो, उसे तुरंत दृढ़ता के साथ कर

डालना चाहिये। बिस्तरे पर पड़े पड़े कुछ भी न खाना पीना चाहिये। जाग जाने के बाद भी पलंग पर पड़े पड़े करवटें बदलने और इधर उधर की बातें सोचने से हर एक काम में ढीलेपन की आदत पड़ जाती है और मन शुद्ध नहीं रहता। बिस्तरे पर पड़े पड़े मनुष्य को विचार-शक्ति को काम में लाने का प्रयत्न भी न करना चाहिये। उस समय वह शक्ति ठीक ठीक काम नहीं कर सकती और ऐसी दशा में दृढ़, स्वच्छ और सत्य विचारों का होना असम्भव है। पलंग पर मनुष्य को केवल सोने के लिये लेटना चाहिये न कि सोचने के वास्ते। और जब मनुष्य सो चुके तो फिर सोचने और काम करने के लिये उठ जाना चाहिये।

दूसरी सीढ़ी यह है कि स्वार्थपरता या पेटूपन को दूर किया जाए। भारतवर्ष में इसका रिवाज बहुत बढ़ा हुआ है। कुछ मनुष्य जैसे मथुरा के चौबे तो ऐसे हैं कि उनका पेशा ही दूसरों के यहां ठोंस ठोंस कर खाने का है। वे खाने के लिये ही जाते हैं। ऐसे मनुष्यों को पेटू कहना चाहिये। पेटू मनुष्य वह है जो केवल पाशविक इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिये खाता है। भोजन करने के सच्चे उद्देश्य को न समझ कर केवल स्वाद वश खाता है। आवश्यकता से भी अधिक खा जाता है और सदा मिठाइयों और माल मलीदों के खाने की लालसा करता रहता है। यदि किसी मनुष्य की ऐसी आदत पड़ जावे तो उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिये इस आदत को छोड़ना उसके लिये अत्यंत आवश्यक है। उसको उचित है कि अपने भोजन की मात्रा को घटावे और कम बार भोजन करने की इच्छा को रोके और जो भोजन करे वह स्वच्छ और साधारण हो। भोजन के लिये नियत समय रखना

चाहिये । उसके आगे पीछे कदापि भोजन न किया जाए। रात्रि के समय, जहां तक हो सके, कम भोजन करना चाहिये। रात्रि में अधिक खाने से चित्त भारी रहता है और शरीर में आलस्य रहता है। इस प्रकार नियमानुसार खाना खाने से अधिक भोजन की इच्छा स्वयं कम हो जाएगी और अपना मन अपने वश में हो जाएगा । मन के वश में होने से सात्विक भोजन की ओर स्वभावतः मन आकर्षित होगा। स्मरण रहे, हृदय का परिवर्तित होना अत्यंत आवश्यक है । यदि केवल भोजन में परिवर्तन हो गया और मन जैसा का तैसा बना रहा तो भोजन का परिवर्तन व्यर्थ है । भोजन को नियमानुसार इसी लिये बनाना है कि जिस से हृदय की शुद्धि हो और चित्त की वह वृत्ति दूर हो जाए जो अधिक भोजन की इच्छा पैदा कराके मनुष्य को पेटू बनाती है ।

जब शरीर पर भली भांति अधिकार हो जाता है, जब कर्त्तव्य का दृढ़ता के साथ पालन किया जाता है, जब कार्य और कर्त्तव्य कर्म में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं किया जाता, जब प्रातःकाल उठने में आनंद आने लगता है, जब शील, संयम, मितव्यता आदि गुण मनुष्य के स्वभाव बन जाते हैं, जब रूखा सूखा जो कुछ सामने आवे उसी में संतोष होने लगे और जब पेटूपन की इच्छा बिलकुल जाती रहे, तब यह कहना चाहिये कि उसने उच्च जीवन की दो सीढ़ियों को तै कर लिया है और सत्य का पहला बड़ा पाठ सीखा गया है । इस प्रकार हृदय में उत्तम जीवन की जड़ मजबूत जम जाती है। दूसरा पाठ सद्भाषण का है। इस पाठ की क्रमानुसार पांच सीढ़ियां हैं। सब से पहिली सीढ़ी चुगली खाने की आदत को दूर करना है। दूसरों को दोष लगाना

और उनके सम्बन्ध में मिथ्या भाषण करना और उनके अवगुणों का ढूंढना और उनकी अनुपस्थिति में बढ़ा कर कहना अथवा उनकी बुरी बातों का प्रगट करना इसी का नाम चुगली खाना है। प्रत्येक मिथ्या भाषण में निर्दयता, कपट और असत्य का अंश आ जाता है। जिस मनुष्य का उद्देश्य उच्च जीवन व्यतीत करने का है, वह मिथ्या, निंदक और क्रूर शब्दों को जिह्वा पर लाने से पहले ही रोक देगा और फिर उन असद्विचारों को भी दूर करने का प्रयत्न करेगा जिनके कारण ऐसे शब्द जिह्वा पर आते हैं। अब वह इस बात का पूरा पूरा ध्यान रक्खेगा कि उस के मुख से कोई शब्द ऐसा न निकल जाए जिससे किसी की निंदा हो। वह कभी किसी की अनुपस्थिति में उसकी बुराई नहीं करेगा और न कभी किसी के विषय में ऐसी कोई बात कहेगा कि जिसको वह उसके सामने नहीं कह सकता। इस प्रकार अंत में दूसरों की कीर्ति और चरित्र को सत्कार की दृष्टि से देखने लगेगा और मन की उन अनुचित अवस्थाओं का नाश कर देगा जिन से मिथ्या भाषण की उत्पत्ति होती है।

दूसरी सीढ़ी यह है कि व्यर्थ की गप्पाष्टक को बन्द किया जाए। दूसरों की घरेलू और गुप्त बातों के विषय में बात चीत करना, केवल समय को व्यतीत करने के लिये बातें करना तथा बिना किसी मतलब के व्यर्थ की बातें करने का नाम गप है। ऐसी व्यर्थ की बातें अनियमित और अशिक्षित मन से ही पैदा होती हैं। धर्मात्मा सदाचारी मनुष्य अपनी जिह्वा को अपने वश में रक्खेगा और इधर उधर की व्यर्थ की बातें नहीं करेगा। वह अपनी वाणी को दृढ़ और शुद्ध बनाएगा और या तो वह किसी मतलब से बोलेगा या बिल्कुल चुपचाप रहेगा।

अपशब्द और कठोर शब्दों का बोलना भी एक अवगुण है, इस को दूर करना चाहिये। जो मनुष्य दूसरों को गाली देता है या दूसरों को दोष लगाता है वह स्वयं सत्य मार्ग से भटका हुआ है। दूसरों पर कटु शब्दों वा गालियों की बौछार करना अपने को घोर मूर्खता में डालना है। जब किसी मनुष्य के मन की प्रवृत्ति किसी को गाली देने या किसी की बुराई करने की ओर हो तो उसे चाहिये कि वह अपनी जिह्वा को रोक ले और स्वयं अपने ऊपर दृष्टि डाले। सच्चरित्र और सदाचारी मनुष्य गाली गलौज के देने और झगड़ा करने से सदा अपने को बचाता है और केवल ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जो उपयोगी और आवश्यक हैं, सत्य और पवित्र हैं।

इसके बाद की सीढ़ी यह है कि अनाप शनाप की बातें न की जाएं। नीच और तुच्छ शब्दों का बोलना, बेहूदा हँसी मजाक करना, भद्दी गँवार कथाओं का कहना जो सिवाए हँसी दिलाने के और किसी काम की नहीं, दूसरों से हद से ज्यादह बढ़ जाना कि जिस से उन को बुरा लगे, दूसरों के विषय में और विशेष कर अपने से बड़े गुरु जन आदि के विषय में अनुचित शब्दों का प्रयोग करना—ये सब बातें ऐसी हैं जो सत्यप्रिय और सदाचारी मनुष्य से दूर रहेंगी। शोक! जरा सी देर की हंसी के लिये अनुपस्थित मित्रों या हमजोलियों तक का निरादर किया जाता है और जीवन की सम्पूर्ण पवित्रता हंसी में नष्ट कर दी जाती है। जहां दूसरों का समुचित आदर और सत्कार नहीं किया जाता, वहां धर्म और सद्गुण का भी अभाव हो जाता है। जब वाणी और व्यवहार में से विनय,

गंभीरता और महत्व जाता रहता है तो सत्य का भी नाश हो जाता है, नहीं नहीं सत्य मार्ग का द्वार तक लोप हो जाता है। युवकों के लिये भी अनादर हेय है और वृद्ध पुरुषों और उपदेशकों में तो इस अवगुण का होना भारी ग़ज़ब है। उपदेशकों और बड़े बूढ़ों की जवान लोग नक़ल किया करते हैं। जब ये ही लोग आदर से गिरे हुए मिलेंगे तो वही हाल हो जाएगा कि अन्धा अन्धे को मार्ग बतावे और खड्ड में पड़े । सच्चरित्र मनुष्य सदा गंभीर और आदरपूर्ण शब्दों का प्रयोग करेगा, वह किसी अनुपस्थित मनुष्य के विषय में वैसे ही आदर और प्रेम से बातें करेगा जैसे मृतक मनुष्यों के विषय में। वह कदापि विचार शून्य बातें नहीं करेगा और सदैव इस बात का ध्यान रक्खेगा कि ज़रा सी देर की हँसी मज़ाक के लिये मैं कहीं अपने पद के अयोग्य बात न कह बैठूं। उसको शुद्ध और निष्पाप वार्त्तालाप में ही आनंद आवेगा। उसकी वाणी मधुर और मीठी होगी। ज्यों ज्यों उसे उच्च जीवन की प्राप्ति में सफलता होती जाएगी त्यों त्यों उसकी आत्मा शांत और पवित्र होती जाएगी।

सब से अन्तिम सीढ़ी इस पाठ की यह है कि वाणी ऐसी न होनी चाहिये जिस में दूसरों के दोष निकालने का तत्व पाया जावे। दूसरे मनुष्यों के छोटे २ दोषों को भी बढ़ा कर कहना, व्यर्थ में ज़रा ज़रा सी बातों में बाल की खाल निकालना है। बिना आधार की झूठी कल्पनाओं, विश्वासों और सम्मतियों पर व्यर्थ की तर्क वितर्क करना ये सब इसी अवगुण के अंतर्गत हैं। मनुष्य को स्मरण रहे, *जीवन का काल बहुत थोड़ा है* इस को व्यर्थ दूसरों के दोष ढूंढने में नहीं खोना चाहिये। दुनिया के पाप, दुख और शोक दूसरों के दोष ढूंढने और उन से झगड़ा करने से

दूर नहीं हो सकते। जो मनुष्य सदा इस बात की ताक में रहता है कि किसी का कोई दूषित शब्द हाथ आ जावे जिस से उस की काट छांट कर सकूं, तो समझना चाहिये कि उस को पवित्र जीवन का मार्ग नहीं मिला है और आत्म-संयम का वास्तविक जीवन अभी उसे खोजना बाक़ी है। जो मनुष्य स्वयं अपने शब्दों को नम्र और पवित्र बनावे वह अवश्य उच्चा.र मार्ग और पवित्र जीवन को प्राप्त कर लेगा। वह अपनी शक्तियों को सुरक्षित रख सकेगा और अपने मन को शांत बनाए रक्खेगा और उस में सत्य का भाव विद्यमान रहेगा। जब मनुष्य अपनी जिह्वा को पूर्ण रूप से वश में कर ले, जब स्वार्थयुक्त इच्छाएँ और अयोग्य विचार जिह्वा पर आ कर शब्दों का रूप धारण करना नहीं चाहते, जब वाणी सर्वथा प्रिय, मधुर पवित्र और उपयोगी हो जाए, जब सत्य और यथार्थ शब्दों के सिवाए और कोई शब्द मुख से न निकले, जब ये सब बातें हो जाएँ तब कहीं सद्भाषण की पांचों सीढ़ियां पूरी होती हैं। तभी सत्य का दूसरा बड़ा पाठ सीखा और समझा जाता है।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि शरीर को इस प्रकार सधाने और जिह्वा को वश में करने की क्या ज़रूरत है? उत्तम जीवन इतने श्रम, उपयोग और प्रयत्न के बिना ही प्राप्त हो सकता है, तब ऐसे लगातार उद्योग करने और सावधान रहने की कौन आवश्यकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि इन के उद्योग और साधने के बिना उत्तम जीवन की प्राप्ति नहीं हो सकती। चाहे आत्मिक हो चाहे आर्थिक, कोई भी काम बिना परिश्रम के नहीं हो सकता है। जब तक छोटी छोटी बातें न जान ली जाएँ तब तक बड़ी बड़ी बातें नहीं जानी जा सकतीं। क्या कोई मनुष्य बिना

औज़ारों को चलाना सीखे कोई लकड़ी की मेज़ बना सकता है ? इसी प्रकार क्या कोई मनुष्य अपने शरीर के दासत्व को दूर किये बिना अपने मन को सत्य के सांचे में ढाल सकता है ? कदापि नहीं। जिस प्रकार जब तक किसी भाषा के अक्षरों और शब्दों का ठीक २ ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक उस की बारीकियों को नहीं जाना जा सकता, उसी प्रकार जब तक सच्चरित्र और सदाचार की वर्णमाला का बोध नहीं हो जाता तब तक मन की गूढ़ अवस्थाओं और भावनाओं का ज्ञान नहीं हो सकता। रही बात परिश्रम की। सो क्या प्रत्येक मनुष्य नवीन काम के सीखने के लिये वर्षों उद्योग नहीं करता है ? और क्या वह दिन प्रति दिन अपने स्वामी की आज्ञा का पालन सावधानी से नहीं करता है ? अवश्य करता है। वह प्रत्येक छोटी २ बात को पूर्ण रीति से इसी वास्ते करता है कि एक न एक दिन वह भी अपने गुरू के बराबर बन जावेगा। क्या कोई भी ऐसा मनुष्य है जो गान विद्या अथवा चित्रकारी अथवा साहित्य अथवा और किसी कला, व्योपार या कार्य को सीखना चाहे और उस के सीखने के लिये श्रम उठाने को तैयार न हो ? जब साधारण बातों के सीखने के लिये श्रम की आवश्यकता है तो क्या आत्मज्ञान के लिये जो सर्वोत्तम है, श्रम का ख्याल किया जाएगा ? वह मनुष्य जो इस मार्ग को बहुत कठिन बतलाता है और कहता है कि मैं बिना श्रम के सत्य चाहता हूं, बिना उद्योग के मोक्ष चाहता हूं, कदापि स्वार्थ के दुःखों और प्रपंचों से बाहर नहीं निकल सकेगा। उसका मन कभी शांत और सुरक्षित न होगा और न उसका जीवन कभी नियमित बनेगा। उस मनुष्य का प्रेम केवल भोग विलास से है और सत्य से नहीं।

जो मनुष्य हृदय से सत्य का उपासक है और उसके जानने की बहुत अभिलाषा रखता है वह किसी भी प्रकार के परिश्रम को न समझेगा। धैर्य्य के साथ साथ प्रसन्नता से श्रम करता जायगा और अभ्यास करते करते एक दिन सत्य को प्राप्त कर लेगा।

शरीर और जिह्वा की इस प्रारम्भिक साधना की आवश्यकता उस समय भली भांति मालूम होने लगेगी जब इस बात को पूर्ण रूप से समझ लिया जाएगा कि बाहर की समस्त अनुचित दशाएँ केवल हृदय की अनुचित दशाओं का परिणाम है। यदि शरीर में आलस है तो मन भी आलसी होगा। जिह्वा का वश में न होना मन के वश में न होने की सूचना देता है और बाहर की दशाओं की चिकित्सा करना वास्तव में आन्तरिक दशा की चिकित्सा करना है। इसके अतिरिक्त इन दशाओं को दूर करना तो उस महान् कार्य का एक अंश है जो उत्तम जीवन की प्राप्ति के वास्ते किया जाता है।

बुराई से बचना भलाई की ओर जाना है। जो मनुष्य आलस और स्वार्थपरता को छोड़ रहा है, वह वास्तव में शील, संयम, नियम शीलता और आत्म-समर्पण आदि गुणों को ग्रहण कर रहा है और साथ ही में अपने में वह बल, साहस और दृढ़ता उत्पन्न कर रहा है जो बड़े और ऊंचे कामों के करने के लिये आवश्यक है। जब कि वह वाणी के दोषों को दूर कर रहा है तो अपने में सत्यता, नम्रता, दयालुता, और आत्म-बल आदि गुणों को भी बढ़ा रहा है और उस मानसिक दृढ़ता और स्थिरता को प्राप्त कर रहा है जिन के बिना मन की वृत्तियां ठीक नियमित नहीं हो सकतीं और चरित्र और ज्ञान की उच्चतर अवस्थाओं तक पहुंच नहीं हो सकती। ऐसे ही ज्यों ज्यों वह ठीक ठीक

काम करना सीखता जाता है त्यों त्यों उस का ज्ञान बढ़ता जाता है और उस की सूक्ष्म दृष्टि तेज होती जाती है। जिस प्रकार जब विद्यार्थी अपने पाठ को याद कर लेता है तो उस को बड़ी प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार जब सदाचारी धर्मात्मा मनुष्य अवगुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है तो उसे ऐसा आनन्द प्राप्त होता है कि जो विषय-वासना वाले मनुष्य को कदापि नहीं हो सकता।

अब हम उच्च जीवन के तीसरे पाठ पर आते हैं। वह यह है कि मनुष्य को प्रति दिन तीन विशेष गुणों का अभ्यास करना चाहिये—१ अपने कर्त्तव्य कर्म का निस्वार्थ पालन करना, २. सत्य पर अटल रहना, ३. अनन्त क्षमा। पहले दो पाठों में जो मन की वासनाएँ बतलाई गई हैं उन को दूर कर के सत्य और दाचार का अभिलाषी मनुष्य उच्चतर और कठिनतर कार्यों के करने के लिये और हृदय के गूढ़ भावों को संयम में लाने और शुद्ध करने के लिये तैयार रहता है।

जब तक मनुष्य अपने कर्त्तव्य का ठीक ठीक पालन नहीं करता, तब तक उत्तम गुण नहीं जाने जा सकते और सत्य का ज्ञान भी नहीं हो सकता। कर्त्तव्य को प्रायः लोग दुःखमय कार्य समझा करते हैं। वे समझते हैं कि कर्त्तव्य एक बला है कि जिसे जैसे तैसे करना ही है। कर्त्तव्य को ऐसा समझना मन की स्वार्थयुक्त वृत्ति से तथा जीवन के वास्तविक अभिप्राय के न समझने के कारण है। उचित यह है कि कर्त्तव्य को उच्च और पवित्र कार्य समझना चाहिये और उस का पूर्ण रूप से निःस्वार्थ होकर पालन करना मनुष्य के जीवन का एक मुख्य नियम होना चाहिये। कर्त्तव्य का पालन करते समय सम्पूर्ण व्यक्तिगत भावों और स्वार्थयुक्त विचारों को निकाल बाहर करना चाहिये और

जब ऐसा हो जाएगा तो कर्त्तव्य फिर दुःख नहीं किन्तु सुख का कारण हो जाएगा । केवल उसी को कर्त्तव्य बुरा मालूम होता है कि जो उस से कोई स्वार्थ अथवा लाभ की आशा रखता है । यदि कर्त्तव्य को दुःखमय जाननेवाला मनुष्य अपनी ओर देखे तो उसे जान पड़ेगा कि उसे कर्त्तव्य से दुःख नहीं है, किन्तु कर्त्तव्य से बचने की स्वार्थयुक्त इच्छा में दुःख है । जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्म का ठीक ठीक पालन नहीं करता वह धर्म के मार्ग से गिर रहा है । जिस का हृदय कर्त्तव्य कर्म के विरुद्ध है, वह धर्म और सद्गुण का विरोधी है । कर्त्तव्य कर्म छोटा हो चाहे बड़ा, घर का हो चाहे बाहर का, उत्तम रीति से पालन करना चाहिये । जब कर्त्तव्य प्रेम की वस्तु हो जाती है और प्रत्येक कर्त्तव्य का ठीक २ सच्चे दिल से निःस्वार्थ होकर पालन किया जाता है तब हृदय में से बहुत कुछ स्वार्थता निकल जाती है और सत्य के शिखर की ओर मनुष्य बढ़ जाता है । सच्चरित्र मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्म को ठीक ठीक करने के लिये अपने मन को एक ओर लगाता है और दूसरे के कर्त्तव्य में बाधा नहीं डालता, जैसा कि श्री कृष्ण जी ने स्वयं गीता में कहा है :—

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् :
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥"

अपना कर्त्तव्य कर्म चाहे कितना ही तुच्छ और कठिन हो दूसरों के कर्त्तव्य कर्म से अच्छा है । दूसरी सीढ़ी तीसरे पाठ में सत्य मार्ग पर अटल रहना है । यह गुण हृदय में दृढ़ता से जम जाना चाहिये जिस से मनुष्य के प्रति दिवस के कार्य में इस का प्रवेश हो । सब बेईमानी, चालाकी, धोकेबाजी और पापाचार को सदैव के लिये त्याग देना चाहिये भय नहीं रहना चाहिये । सत्य

के मार्ग से जरा भी हटना सदाचार से हटना है । भाषण में अपनी तरफ़ से कुछ भी घटाना बढ़ाना नहीं चाहिये, साफ़ साफ़ जैसा का तैसा बोलना चाहिये । थोड़ी सी दिखावट के लिए अथवा तनिक स्वार्थ और लाभ के लिए छल कपट, चाहे देखने में वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो, एक ऐसी भ्रमकारक अवस्था है कि जिसके छोड़ देने का मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये । सच्चरित्र और सदाचारी मनुष्य से यह आशा की जाती है कि वह केवल अपने शब्दों, विचारों और कार्यों से ईमानदारी का ही व्यवहार नहीं करेगा; किन्तु वह जो बात कहेगा, बिलकुल सच्ची और यथार्थ कहेगा। उस में कुछ भी अपनी तरफ से नहीं मिलाएगा । इस प्रकार अपने मन को सत्य के सिद्धांत के अनुसार बना कर वह क्रमशः लोगों के साथ न्याय का व्यवहार करने लगेगा और न्याय को सामने रख कर जो कार्य्य करेगा, उस में स्वार्थ, वासना, और पक्षपात को बिल्कुल काम में नहीं लाएगा। जब उसे सत्य के गुणों का पूरा पूरा अभ्यास हो जाएगा और सत्य उस के रोम रोम में ऐसा रम जाएगा कि असत्य और दिखावे का लालच सर्वथा जाता रहेगा, तब उस का हृदय स्वच्छ होगा । तभी आचरण दृढ़ होगा और ज्ञान बढ़ेगा। उस समय जीवन का नवीन उद्देश्य हो जाता है और उस में नवीन शक्ति आ जाती है । इस प्रकार दूसरी सीढ़ी पूरी होती है ।

तीसरी सीढ़ी अनन्त क्षमा के अभ्यास की है। स्वार्थ, अभिमान आदि अवगुणों से जो दूसरों को दुःख पहुंचाने का भाव मन में पैदा होता है उस को दूर करने और प्राणी मात्र के साथ उदारता और दयालुता का व्यवहार करने का नाम क्षमा

है। दूसरों से द्वेष वा ईर्ष्या करना और बदला लेना सर्वथा तुच्छ और घृणित है। उन की ओर भले मनुष्य को दृष्टि भी नहीं डालनी चाहिये। जो मनुष्य अपने मन में ऐसे भावों को स्थान देता है, अज्ञान और शोक से उस का कदापि छुटकारा नहीं हो सकता और न उस का जीवन कभी उत्तम बन सकता है। जीवन का सत्यमार्ग भी उस समय मिल सकता है जब ये अवगुण सर्वथा दूर हो जावें और इन का हृदय पर तनिक भी प्रभाव न पड़े। नियमित जीवन की शक्ति और सौंदर्य का अनुभव करना भी उस समय सम्भव है जब क्षमा और उदारता की वृद्धि की जाय।

अत्यन्त दृढ़, सच्चरित्र और सदाचारी मनुष्य के हृदय में निज हानि का विचार भी उत्पन्न नहीं होता। उस के हृदय से बदले का भाव निकल गया है और अब उस का कोई शत्रु नहीं रहा है। तिस पर भी यदि कोई उस के साथ शत्रुता करे तो वह उस से मित्रता का ही व्यवहार करेगा। वह अपने मन में यही ख्याल करेगा कि उस का कुछ दोष नहीं है, वह अज्ञान वश ऐसा करता है। जब हृदय की यह अवस्था हो जाती है, तब आत्मज्ञान की तीसरी सीढ़ी तै हो जाती है और ज्ञान और सच्चरित्रता का बड़ा पाठ समझ और सीख लिया जाता है।

सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की पहिली दस सीढ़ियां और तीन पाठ तो बतला दिए गये हैं। अब यह काम पाठकों का है कि यदि वे इन्हें प्राप्त करने के लिए तैयार हैं तो उन को अपने प्रति दिन के जीवन में जानें और सीखें। इस में सन्देह नहीं कि अनन्त सुख की अवस्था को प्राप्त करने के लिए इस से भी अधिक शरीर और जिह्वा की साधना और उत्तम

गुणों की प्राप्त करना आवश्यक है, किंतु इस समय उन का वर्णन करना लेखक का उद्देश्य नहीं है। यहां पर केवल सच्चे मार्ग के प्रारम्भिक और सरल पाठ बतलाए गये हैं। जब तक इन का पूर्ण रीति से अभ्यास किया जाएगा, तब तक पाठक इतने पवित्र, दृढ़ और ज्ञानी हो जाएँगे कि भावी उन्नति का मार्ग उन से छुपा नहीं रहेगा। जब पाठकों ने ये पाठ समाप्त कर लिये है तो उन को अभी से सत्य के ऊंचे २ शिखर और उन तक पहुंचने का तंग और ढालू रास्ता दिखाई देने लगा होगा और अब वे इस बात को स्वयं जान लेंगे कि आगे बढ़ें या नहीं।

जो मार्ग मैंने बतलाया है, वह ऐसा सीधा है कि हर कोई उस पर चल सकता है और जो कोई चलेगा उस को भी लाभ होगा और संसार को भी लाभ होगा। जिसका उद्देश्य सत्य की प्राप्ति का नहीं है अर्थात् जो प्रवृत्ति मार्ग में लगे हुए हैं उनको भी इस मार्ग पर चलने से बहुत कुछ लाभ होगा, उनका मानसिक और आत्मिक बल बढ़ जाएगा उन की विचार शक्ति सूक्ष्म हो जाएगी और मन शांत और पवित्र हो जाएगा। हृदय में ऐसा परिवर्तन करने से उनके सांसारिक सुख में भी कोई बाधा नहीं आएगी। यही नहीं, किन्तु उन्हें अधिक सच्चा, अधिक शुद्ध और अधिक देर तक रहनेवाला सुख प्राप्त होगा, क्योंकि यदि संसार में कोई सफलता प्राप्त करना चाहता है तो वही मनुष्य है कि जिस ने छोटे छोटे दुर्गुणों और दुराचारों को अपने में से निकाल दिया है और जो अपने शरीर और मन पर शासन करने की शक्ति रखता है और जो अटल सत्य और शुद्ध सच्चरित्रता के मार्ग पर दृढ़ता से चलता है।

——::——

६ मानसिक दशाएं और उनके परिणाम।

त्मोन्नति की बहुत गूढ़ बातें तो इस छोटी सी पुस्तक की सीमा के बाहर हैं। उन्हें छोड़ कर केवल उन मानसिक अवस्थाओं का थोड़ा सा वर्णन किया जाता है जिन से जीवन का विकास होता है और जिन का ज्ञान उन लोगों के लिए उपयोगी है, जो हृदय और मन की उन अन्तरंग गुफाओं को खोजना चाहते हैं, जहां प्रेम, शांति और ज्ञान का भंडार है।

संसार में सारा पाप अज्ञानता से होता है। जब तम अधिक होता है और आत्मा का विकास नहीं होता, तब पाप की ओर रुचि होती है। बुरा करनेवाले और बुरा विचारनेवाले मनुष्य का स्थान जीवन की नाट्यशाला में वही है जो एक अनजान बालक का पाठशाला में। अभी उसे यह सीखना है कि किस प्रकार उसे नियमानुसार विचारना और कार्य करना चाहिये। जिस प्रकार विद्यार्थी को उस समय तक आनन्द नहीं मिल सकता जब तक कि वह अपने पाठ को ठीक २ याद नहीं कर लेता, इसी प्रकार जब तक मनुष्य पाप की दशा से निकल नहीं जाता, उसे आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। जीवन पाठों की एक श्रेणी है। कुछ मनुष्य तो इन पाठों को श्रम कर के सीख लेते हैं और कुछ उनकी तरफ ध्यान भी नहीं देते। वे शुद्ध बुद्ध और प्रसन्न रहते हैं, परन्तु ये पापी, अज्ञानी और दुःखी रहते हैं।

सर्व प्रकार का दुःख मन की बुरी भावनाओं से पैदा होता है । जहां मन की शुद्ध भावना रहती है, वहां सुख ही रहता है । मानसिक शांति का नाम ही सुख है और मानसिक अशांति का नाम दुःख है । जब तक मनुष्य मन की खोटी वासनाओं में रहता है, उसका जीवन शुद्ध नहीं होता और उस को सदा दुःख रहता है । दुःख अज्ञानता में है और सुख ज्ञान में । अपनी अज्ञानता और भ्रम के दूर करने से ही मोक्ष मिलती है । जब तक मन शुद्ध नहीं होता, तब तक बंधन और अशांति रहती है । जब मन शुद्ध हो जाता है, तभी शांति और स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। मन की कुछ बुरी दशाएं और उनके भयंकर परिणाम नीचे लिखे जाते हैं:—

मन की बुरी दशाएं	उनके परिणाम ।
१. द्वेष ।	हानि, उत्पात, विपत्ति, दुःख ।
२. काम ।	बुद्धि की भ्रष्टता, पश्चात्ताप, लज्जा, विनाश ।
३. लोभ ।	भय, अशांति, दुःख, हानि ।
४. अभिमान ।	निराशा, क्लेश, आत्मज्ञान का अभाव ।
५. अहंकार ।	कष्ट, दुःख ।
६. दूसरों को बुरा ठहराना	कष्ट उठाना, दूसरों से घृणित होना।
७. दूसरों का बुरा चाहना ।	असफलता और कष्ट ।
८. स्वार्थ परता ।	क्लेश, विचारशून्यता, असभ्यता, रोग, असावधानी ।
९. क्रोध ।	शक्ति और प्रभाव का ह्रास ।
१०. इच्छा ।	शोक, मूर्खता दुःख, अनिश्चिंतता और अकेलापन ।

मन की उपरोक्त दशाएँ बुरी और छोड़ने योग्य हैं। अन्धकार और अशुद्धता की अवस्थाएँ हैं। वास्तव में बुराई कोई शक्ति नहीं हैं। भलाई के न होवे अथवा उस के ठीक ठीक काम में न लाने का नाम बुराई है। घृणा करनेवाला वह मनुष्य है जिस ने प्रेम के पाठ को ठीक ठीक नहीं पढ़ा है और इसी से उसे दुःख उठाना पड़ता है। जब वह प्रेम को ठीक ठीक समझ लेगा तो घृणा अवश्य दूर हो जाएगी और वह घृणा के अंधकार और अशक्त-पन को भली भांति समझ जाएगा। यही हाल प्रत्येक अनुचित दशा का है। मन की कुछ अच्छी दशाएँ और उनके अच्छे परि-णाम नीचे लिखे जाते हैं।

मन की अच्छी दशाएं	उन के परिणाम।
१. राग।	नम्र भावनायें, आनंद, सुख।
२. शील।	बुद्धि की स्वच्छता, हर्ष, दृढ़ विश्वास।
३. निःस्वार्थता।	साहस, सन्तोष, सुख, बाहु-ल्यता।
४. नम्रता।	शांति, सुख चैन, सत्य का ज्ञान। समता सब अवस्थाओं में सन्तोष।
६. दयालुता।	रक्षा, दूसरों से प्रेम और आदर पाना।
७. दूसरों का भला चाहना।	आनंद और सफलता।
८. आत्म-संयम।	मन की शांति, विचार सूक्ष्मता, स्वच्छता, स्वस्थ्य, आदर।

९. धैर्य । — मानसिक शक्ति, विस्तरित प्रभाव ।

१०. आत्म-विजय — ज्ञान, प्रकाश, सूक्ष्म दृष्टि, शांति ।

ये दशाएं प्रकाश, आनन्द और ज्ञान की हैं । भले मनुष्य को ज्ञान है । वह अपने पाठों को ठीक ठीक सीख चुका है और इस कारण उन बातों को भली भांति जानता है, जिनसे कि जीवन बना हुआ है । उस में ज्ञान है और वह बुराई, भलाई को भली भांति जानता है । उस को अत्यंत सुख है और वह केवल वे ही कार्य करता है जो उचित हैं ।

वह मनुष्य जो मनकी खोटी वासनाओं में फँसा हुआ है, अज्ञानी है । उस को बुराई भलाई की कुछ पहचान नहीं है । न उसे अपना ज्ञान है और न उन कारणों का जिन से उसका जीवन बना है । वह बड़ा दुःखी है और समझता है कि दूसरे लोग मेरे दुःख का कारण हैं । वह अन्धों की तरह काम करता है और अन्धकार में रहता है । न तो उसको अपने अस्तित्व में कोई विशेष उद्देश्य मालूम होता है और न उसे जीवन की घटनाओं में कोई नियमबद्ध कार्य दिखलाई देता है ।

जो मनुष्य उच्च जीवन को पूर्ण रीति से प्राप्त करना चाहता है, जो वस्तुओं को वास्तविक रूप में देखना चाहता है और जीवन के उद्देश्य को समझना चाहता है, उस को चाहिये कि हृदय की समस्त बुरी वासनाओं को त्याग दे और भलाई के अभ्यास में निरंतर तत्पर रहे । यदि वह दुःखी रहता है या किसी बात मे उस संदेह होता है तो उस को अपने अन्तरंग में देखना चाहिये । उसे इस का कारण मालूम हो जाएगा और जब कारण

मालूम हो जाय तो उसे दूर कर देना चाहिये। उसको चाहिए कि अपने हृदय की ऐसी रक्षा करे और उसको ऐसा स्वच्छ रक्खे कि प्रति दिन उस में से बुराई कम होती जाए और भलाई बढ़ती जाए। इस प्रकार वह प्रति दिन बलवान, बुद्धिमान, और सभ्य बनता जाएगा, उस का सुख बढ़ता जाएगा और दिन दिन वृद्धि को प्राप्त होता हुआ उस के अन्धकार को नष्ट कर देगा और उस के मार्ग को प्रकाशमय बना देगा।

——:※:——